ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-6* July- 2021
Innovation The Research Concept

औपनिवेशिक भारत में कृषि और उसका सामाजिक रूपान्तरण

Agriculture and its Social Transformation in Colonial India

Paper Submission: 05/07/2021, Date of Acceptance: 15/07/2021, Date of Publication: 25/07/2021

राजेश कुमार शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
रूधौली, बस्ती,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

औपनिवेशिक भारत से तात्पर्य भारतीय उपमहाद्वीप के उस भाग से है जिसपर युरापीय पारस्परिक संघर्ष के बाद ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हुआ। औपनिवेशिक शासन काल में अपने नवीन राष्ट्रीय स्वरूप के वावजूद भारतीय कृषि का इतिहास अविरत और वर्धनशील असंगठन का इतिहास रहा है। वस्तुतः इस काल में नवीन भूमि सम्बन्धों के कारण संकीर्ण ग्रामीण चरित्र के बदले उसके राष्ट्रीय स्वरूप और महत्व का जन्म तो हुआ लेकिन यह बहुत सम्पन्न और समृद्ध नही हो सका। किसानों की दरिद्रता और ऋणग्रस्तता बढती गई और अनेक खेतिहर सर्वहारा की हैसियत में आ गए। भूमि के अतिशय उपविभाजन और विखंडन का कृषि और कृषक की आर्थिक स्थिती पर अत्यन्त घातक प्रभाव पडा। छोटी जोतो के कारण किसान गरीब बने रहे और कृषि पर आश्रित आबादी की वृद्धि के कारण पशुओं के लिए चारा और चारागाह की समस्या तेजी से बढने लगी। जमीन की जनसंकुलता और उसके उपविभाजन के कारण अनार्थिक जोतो की संख्या में वृद्धि हुई जिसके कारण लगान की राशि में भी भारी वृद्धि हुई जिसे चुकाने में अपने को असमर्थ पाकर किसान अधिकाधिक ऋणग्रस्त होते गए।

Colonial India refers to that part of the Indian subcontinent on which the British Empire was established after European mutual conflict. The history of Indian agriculture, in spite of its new national form during the colonial period, has been a history of continuous and growing disorganisation. In fact, due to new land relations in this period, instead of the narrow rural character, its national form and importance was born, but it could not become very prosperous and prosperous. The poverty and indebtedness of the peasants increased and many agriculturists became proletarians. The excessive subdivision and fragmentation of land had a very disastrous effect on agriculture and the economic condition of the farmer. The farmers remained poor due to small holdings and due to the increase in the population dependent on agriculture, the problem of fodder and pasture for livestock started increasing rapidly. Population of land and its sub-division led to an increase in the number of non-economic holdings, due to which there was a huge increase in the amount of rent, which, finding itself unable to pay, the farmers became more and more indebted.

मुख्य शब्द : कृषि, औपनिवेशिक, विखण्डन, दरिद्रता, संघर्ष, हस्तशिल्पी, कारीगर, स्वामीत्व, महाजन, ऋणग्रस्तता, उद्योग, भूमि, काश्तकार, जनसंख्या आदि।

Agriculture, Colonial, Fragmentation, Poverty, Struggle, Handicraft, Artisan, Ownership, Moneylender, Indebtedness, Industry, Land, Tenant, Population etc.

प्रस्तावना

भूमि का उपविभाजन और विखण्डन भारतीय कृषि का विनाशकारी तथ्य है। हर किसान की जमीन कम होती गई और जोत वाली जमीन अधिकाधिक अनार्थिक होती गई। वस्तुतः यूरोप में जब कृषि व्यवस्था में पूँजीवादी संबंधों का जन्म हुआ तो उनके साथ ही खेती की ईकाई के रूप में सुसंगठित फार्मो का जन्म हुआ जबकि भारत में अंग्रेजों ने जमीन का कुछ ऐसा पुनर्गठन नहीं किया। स्वामित्व और निजी जोत की दृष्टि से जमीन मिली जुली सी रही। जमीन के

बिखंडन और खुली हुई भूमि व्यवस्था से होने वाले नुकसान पहले की ही तरह जारी रहे।[1] परिवार के सदस्य पहले गॉव द्वारा पूरे परिवार को दी गई जमीन के संयुक्त मालिक थे लेकिन अब जमीन के निजी स्वामित्व की स्थापना और उसके हस्तांतरण के आधार के साथ ही संयुक्त परिवार में अपकेन्द्रित प्रवृतियों का जन्म हुआ जिसके चलते पारिवारिक भूसम्पदा का विभिन्न दावेदारों के बीच वितरण होने लगा और जमीन का अधिकाधिक उपविभाजन हुआ।[2]

साहित्यावलोकन

''औपनिवेशिक भारत में कृषि और उसका सामाजिक रूपान्तरण'' पर किये गये इस शोध का उद्देश्य तथा शोध पद्धति का विवरण प्रस्तुत करते हुए इस विषय पर लिखे गये साहित्य का अवलोकन, विश्लेषण और मूल्यांकन किया गया है, जैसे –

भारतीय राष्ट्रवाद के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए ए0 आर0 सरदेसाई की सर्वाधिक चर्चित पुस्तक ''भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि'' को सन्दर्भित किया जाता है। इस पुस्तक में लगभग 150 वर्षो में भारतीय समाज के रूपान्तरण और इसके फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रवाद के विभिन्न स्वरूपों के उत्थान का विस्तृत अध्ययन किया गया है। ऐतिहासिक–भौतिकवादी पद्धति का उपयोग करते हुए इस पुस्तक में 19वीं–20वीं शताब्दी के भारतीय इतिहास के आर्थिक–सामाजिक विश्लेषण को समेकित करने का प्रयास किया गया है। वास्तव में यह एकमात्र ऐसी पुस्तक है जो भारतीय राष्ट्रीय चेतना के उदय पर विस्तृत और क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत करती है। अनमोल पब्लिकेशन प्रा0 लि0 के बैनर तले प्रकाशित सिबा प्रसाद नन्दी की पुस्तक ''इकोनोमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री ऑफ माडर्न इण्डिया (1757–1947)'' चतुर्थ संस्करण 2019 में प्लासी के युद्ध के बाद से भारतीय समाज का मध्ययुग से आधुनिक आधार पर जो रूपान्तरण हुआ उसका उसके परिणामस्वरूप जिन नवीन प्रवृतियों का उदय हुआ उसका एक विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। पैंगविन बुक लिमिटेड द्वारा प्रकाशित के0 एस0 शेवलंकर की पुस्तक '' द प्राब्लम्स ऑफ इण्डिया'' में भारत में अंग्रेजों के आगमन के समय की आत्मनिर्भर ग्राम समुदायों और उसके घटकों का विस्तृत विवरण दिया गया है। इस पुस्तक में इस बात का विस्तृत विवरण दिया गया है कि भारतीय गॉवों में कृषि उत्पादन की संरचना सदियों से कैसी रही और ग्रामीण अर्थतन्त्र के क्या–क्या आधार रहे। तीर्थंकर राय की कृति ' ट्रेडिसनल इन्डस्ट्री इन द इकोनामी ऑफ कोलोनियल इण्डिया'' द्वितीय संस्करण 2019 में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि अंग्रेजों की भारत विजय के फलस्वरूप भारत की आर्थिक संरचना पर क्या प्रभाव पडा। प्रस्तुत पुस्तक में ऑकडों और उद्धरणों से यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है कि भारतीय कृषि के रूपान्तरण ने एक नई सामंतवादी और जमींदारी व्यवस्था को सृजित किया जिसका आधार शोषणतंत्र पर निर्भर था और जिसने किसानों की दरिद्रता और ऋणग्रस्तता में अभिवृद्धि की। इस शोषणतंत्र के परिणामस्वरूप कैसे भारत के परम्परागत शिल्प और हस्त उद्योग विनष्ट हो गये। और अन्त में 2019 में हि0मा0क्रि0नि0, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित ''भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवादः एक अध्ययन, संपादक– डा0 हिमांशु राय ने अपनी पुस्तक में भारतीय कृषि के औपनिवेशिक चरित्र का पूरा पोल खोल कर रख दिया है। इस पुस्तक में स्पष्ट किया गया है कि कृषि के रूपान्तरण से कैसे ग्रामीण हस्तशिल्प का पतन हुआ जो आगे चलकर भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में सहायक बना।

अध्ययन का उद्देश्य

यूँ तो अंग्रेजो के भारत में राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के पश्चात भारत की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक परिवर्तत हुए लेकिन इनका सबसे घातक प्रभाव भारत की आर्थिक व्यवस्था पर पडा। भारत में विद्यमान गॉवों की आत्मनिर्भरता समाप्त होती चली गई और भारतीय काश्तकार मजदूर/बंधुआ मजदूर में परिवर्तित होते गये। गॉवों की आत्मनिर्भरता समाप्त होने से ग्रामीण भारत के सामाजिक संरचना में आमूलचूल परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से हमने किसानों की दरिद्रता और उनकी ऋणग्रस्तता से उपजे सामाजिक संरचना में होने वाले बदलाव को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध–पत्र हेतु शोधकर्ता की पद्धति ऐतिहासिक, समालोचनात्मक तथा व्याख्यात्मक रही है। ज्ञात तथ्यों तथा इस विषय पर उपलब्ध पूर्ववर्ती लेखकों के विचारों और सरकारी दस्तावेज का विश्लेषण और आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए प्राप्त परिणामों का सत्य की कसौटी पर परीक्षण करने का प्रयास किया गया है। शोध अध्ययन में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु प्रस्तुत अध्ययन की विषय और सामग्री की होती है। इस विषय पर प्राथमिक स्रोत के रूप में विभिन्न रिपोर्ट तथा इतिहासकारों की विभिन्न रचनाओं में पर्याप्त मात्रा में सामग्री मौजूद है जिसका प्रयोग इस शोधपत्र में किया गया है। इसके अतिरिक्त पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित विभिन्न सम्पादकों के विचारों को विश्लेषण करते हुए सामग्री एकत्र कर उसका प्रयोग द्वितीयक स्रोत के रूप में किया गया है।

विषय विस्तार

जनसंख्या वृद्धि और बटाईदार प्रथा के उदय के कारण भी जमीन का विभाजन हुआ। छोटे छोटे खेत और छोटे हो गए लेकिन जमीन के उपविभाजन और बिखण्डीकरण की प्रक्रिया में सबसे अधिक निर्णायक तथ्य था खेती पर निर्भर लोगों की संख्या में वृद्धि। इसके कारण शहर और गॉव के हस्तशिल्पियों और कारीगरों की आर्थिक बर्बादी भी हुई। कृषि पर आश्रित लोगों की संख्या में वृद्धि की प्रक्रिया निम्नलिखित रिकार्ड से स्पष्ट होती है[3]–

वर्ष	खेती पर निर्भर आबादी (प्रतिशत में)
1891	61.6%
1909	65.5%
1910	72.2%
1921	73.0%
1931	75.0%

इधर कृषि पर आश्रित लोगों की संख्या बढ़ रही थी और उद्योग धंधों पर आश्रित लोगों की संख्या घट रही थी [4]

वर्ष	उद्योग धन्धों पर निर्भर आबादी (प्रतिशत में)
1911	5.5%
1921	4.9%
1931	4.3%
1941	4.2%

यह प्रवृति उन्नीसवी सदी के मध्य से ही बढती जा रही थी। 1840 के अकाल आयोग की रिपोर्ट में कहा गया कि – ''जिन्हे कृषि के अतिरिक्त अन्य कोई रोजगार नहीं है उनकी संख्या खेती के लिए आवश्यक लोगों की संख्या से बहुत अधिक है।[5] जोतों की अतिशय बिखंडता के कारण किसानों के लिए सुचारू रूपेण खेती करना काफी कठिन था।[6] उपविभाजन और विखंडन की स्थिती यह थी कि अनेक छोटे खेतों में हल का भी इस्तेमाल संभव नहीं था..... जोतो के अधिकाधिक विखण्डीकरण के कारण खेतीहर मजदूरों की संख्या बढती गई और कुदाल और फावडे का इस्तेमाल बढने लगा[7] जिसका कृषक की आर्थिक स्थिती पर घातक प्रभाव पडा।

कृषि का वाणिज्यिकीकरण का प्रभाव

कृषि के वाणिज्यिकीकरण के पश्चात भारतीय काश्तकारों को भारतीय एवं विश्व की मण्डी के लिए फसल उगाना पडता था इसलिए वह व्यापार की निरन्तर बदलती हुई गतिविधि का शिकार हुआ। उनकी आय और जिम्मेदारियों के बीच बढती हुई विषमता ने किसानों को अधिक कर्ज लेने के लिए बाध्य किया। यह एक दूषित चक्र था जिसमें किसान की गरीबी से ही अपनी उसकी ऋणग्रस्तता जैसे–जैसे बढी उसकी बढती हुई गरीबी का कारण सिद्ध हुई। किसान न तो ऋण चुकाने की स्थिती में रहा और न ही उसका सूद। इस तरह वह महाजनों को अपनी फसल दे देने के लिए बाध्य हुआ ही, विवश होकर उसे अपनी जमीन भी बेचनी पडती थीं।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता को समाप्त करने का सरकारी प्रयास असफल रहा। रायल कमीशन आन एग्रीकल्चर की रिपोर्ट में कहा गया कि – ऋणग्रस्तता की समस्या के समाधान के लिए किए गए सरकारी प्रयास अपेक्षाकृत असफल रहे। भारत के अधिकांश हिस्सों में ऋणग्रस्तता के कारण किसान अन्ततोगत्वा कृषकदास की स्थिती में पहुँच गए।[8] स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय कृषि और अर्थव्यवस्था मूलतः औपनिवेंशिक थी जो देश के मुक्त विकास में बाधक था।

कृषि क्षेत्र में वर्ग विशिष्टीकरण की प्रक्रिया लगातार तीव्र होने से काश्तकारों की संख्या घटती गई और गैरकाश्तकारों जमींदारों की संख्या बढती गई। बंगाल, उडीसा, मद्रास, उत्तर पश्चिमी प्रान्त और देश के अन्य भागों में अंग्रेजी सरकार द्धारा दिए गए मालिकाना हक के कारण जमींदारों का जो वर्ग बना उसके अतिरिक्त अब गैरकाश्तकारों का एक नया वर्ग सृजित हुआ। ब्रिटिश भारत में गैरकाश्तकार जमींदार और मजदूरों की बढती हुई संख्या को निम्न तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है[9] –

मद्रास (प्रति हजार)

	1901	1911	1921	1931
गैर कामगार जमींदार	19	23	49	34
गैर कामगार बटाईदार	01	04	28	16
कामगार जमींदार	484	426	381	390
कामगार बटाईदार	151	207	225	120
सर्वहारा	345	340	317	429

बंगाल (प्रति हजार)

	1921	1931	प्रतिशत वृद्धि या कमी
गैरकाश्तकार जमींदार	390	634	+62
काश्तकार बटाईदार	9275	6041	–35
सर्वहारा	1805	2719	+50

सामन्तीकरण व्यवस्था का सुदृढीकरण

देश कें कई राज्यों में कृषि दासता जैसी श्रम व्यवस्था प्रचलित थी। गुजरात में डुब्ला, हैदराबाद में भगेला, मध्य प्रान्त में बरसेलिया, तामिलनाडु में पडियल और दूसरे क्षेत्रों में ऐसे ही अन्य समुदाय भारतीय समाज के निम्नतम अंग थे जो लगभग भयंकर आर्थिक शोषण और सामाजिक प्रतिबंधों की स्थिती में रह रहे थे।[10] व्यापारी, साहूकार, और शहर के धनी लोग – गैर खेतीहर किस्म के इन भूस्वामियों को खेती से कभी कोई मतलब नहीं था। अपनी जमींन के उत्पादन को सुव्यवस्थित करने, उसकी देखरेख करने और उसकी तकनीक और तरीकों को बदलने की उन्हे कोई विशेष चाहत न थी।[11] इसलिए इस वर्ग ने ऊँचे लगान पर बटाईदारों को अपनी जमीन देदी। बटाईदारी व्यवस्था के कारण रैयत और जमींदारों

के बीच बहुत सारे मध्यस्थ आ गए। राधाकमल मुखर्जी ने उपसामन्तीकरण की इस प्रक्रिया के बारे में लिखा है कि – 'कुछ जिलों में उपसामन्तीकरण इस आश्चर्यजनक सीमा तक पहुॅच गया है कि सबसे उपर जमींदार और सबसे नीचे वास्तविक काश्तकार के बीच 50 से भी मध्यस्थ स्वार्थ विद्यमान हैं।'[12] जमीन का विभाजन, कृषि की अतिसंकुलता, उसकी उत्पादनशीलता का क्रमिक ह्रास, उसका तकनीकी पिछडापन, किसानों की ऋणग्रस्तता और उसका सर्वहाराकरण और अन्ततः अधिकाधिक लगान वसूली की समस्या एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में उभरकर सामने आई।[13]

नवीन भूमि सम्बन्धों का आगमन

अंग्रेजो की भारत विजय और नई प्रशासनीक व्यवस्था के कारण भारतीय कृषितंत्र एक नये रास्तों से विकसित हुआ लेकिन भारत की औपनिवेशिक स्थिती के कारण न तो यह विकास ही उन्मुक्त था और न ही यहॉ की कृषि और कृषक आबादी ही समृद्ध और उन्नतशील हो सकी। भारत में नवीन भूमि सम्बन्धों के आगमन के साथ समानान्तर आद्यौगिक विकास नहीं हुआ। ब्रिटिश उद्योगों के मशीन निर्मित सामान के बाजार में आने के कारण भारतीय कारीगरों में बहुसंख्यक बर्बाद हो गए चूॅकि देश में उद्योगों का विकास नहीं हो रहा था इसलिए उन्हे अन्यत्र काम नहीं मिल सका और बडी संख्या में लोग खेती पर निर्भर हो गए। यह भारतीय कृषि के विकास के रास्ते में सबसे बडी बाधा रही है। भूमि की जनसंकुलता और विखण्डीकरण के फलस्वरूप किसानों की आय में लगातार कमी होती गई। कृषि संकट, विश्व बाजार के उतार चढाव, किसानों का महाजनों द्वारा शोषण आदि कारणों से किसानों की आमदनी और भी घटी और वे लगातार गरीब होते गए। किसानों की बढती हुई ऋणग्रस्तता के कारण जमीन बढी तेजी से धनी भूस्वामियों, महाजनों और साहूकारों के हाथ में जाने लगी। किसानों की भू–क्षुधा का लाभ उठाकर वे किसानों को लगान पर जमीन देने लगे और किसान उसका शिकमी बन्दोवस्त करने लगे। इस तरह कृषक आबादी में श्रेणीश्रृंखला का जन्म हुआ। जो खेती करता था वह इस श्रेणीश्रृखला की निम्नतम कडी था और उसे गैर काश्तकार जमींदारों, काश्तकारों और उप काश्तकारों का सारा बोझ बर्दाश्त करना पडता था जिसके फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में वर्गो का ध्रवीकरण बढा। कृषक समुदाय के एक छोर पर सम्पति एकत्र होती गई और दूसरी छोर पर भूमिहीनता और बेहद गरीबी। राधाकमल मुखर्जी के शब्दों में – '' जबतब जमीन के नए व्यवस्थापन, कृषि सहयोग और बैज्ञानिक कृषि के जरिए ग्रामीण अर्थतन्त्र में मूलभूत परिवर्तन नही होते, तबतक भूमिहीन किसानों की समस्या और भी भयंकर होती जाएगी और यह वर्ग शहर के आद्यौगिक सर्वहारा जैसा होता जाएगा। यह प्रवृति आने वाले सामाजिक उथल–पुथल की पूर्व सूचना है।''[14]

इस तरह भारत की औपनिवेशिक स्थिती के कारण खेती में नए भूमि सम्बन्धों के आगमन से भी कृषि का आधुनिकीकरण नहीं हुआ और न ही किसान समृद्ध हो सके। जमीन पर सामाजिक स्वत्व के बदले निजी स्वत्व के आगमन से सामाजिक विनिमय सम्बन्धों का विकास हुआ लेकिन खेती के तकनीकी आधार में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ। भारतीय जनता को राजनीतिक स्वतन्त्रता नहीं थी। वह भारतीय अर्थतन्त्र, उद्योग, वाणिज्य और कृषि के उन्मुक्त विकास के लिए हितकर स्वतन्त्र आर्थिक नीतियों और योजनाओं का न तो निरूपण कर सकती थी और न ही उसका कार्यान्वयन। भारतीय कृषि का विकास ब्रिटिश पूॅजीवाद को ब्रिटिश उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल की आपूर्ति के लिए ही कृषक उपनिवेश के रूप में भारत की जरूरत थी। फलतः भारतीय कृषि का ऐसा स्वतन्त्र विकास नहीं हो सका जिससे भारतीय जनता की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो। स्पष्ट है कि भारतीय कृषि की प्रगति एकांगी और विकृत रही। फिर भी यह मानना पडेगा कि ब्रिटिश शासन काल में गॉव की फसल देश और दुनिया के बाजार में आई और खेती सारे देश के अर्थतन्त्र के तात्विक अंग के रूप में प्रतिष्ठापित हुई और यह अंग्रेजो की भारत– विजय का प्रगतिशील पहलू था।

इस तरह भारतीय कृषि और उसकी समस्याओं को राष्ट्रीय रूप और विस्तार मिला। भारतीय कृषि के राष्ट्रीय उन्नयन के कारण अब कृषि सम्बन्धी समस्याऍ सारे देश की थी। दूरस्थ मिलकियत, अतिशय भूमिकर, अपर्याप्त उद्योगीकरण, देश की कृषक आबादी को यह तो एहसास था ही कि इन्ही सब कारणों से उनकी सम्मिलित समस्याओं का जन्म हुआ है। किसानों की स्थिती और कृषि की अन्य समस्याऍ अब अखिल भारतीय समस्याऍ थी। चूॅकि कृषि सम्बन्धी समस्याऍ सारे राष्ट्र की समस्याऍ थी इसलिए उनके आधार पर सारे राष्ट्र को संगठित और आन्दोलित किया जा सकता था। प्रत्येक पार्टी चाहे वह किसी भी सामाजिक दल का प्रतिनिधित्व करती हो उसकी कृषि सम्बन्धी अपनी नीति थी और उस नीति के पीछे उस सामाजिक दल विशेष के स्वार्थ थे। विभिन्न वर्गो, के बीच स्वार्थो का जो संघर्ष था उसके चलते विभिन्न वर्गो की नीति और कार्यक्रम भिन्न थे। फिर भी, विभिन्न और विरोधी नीतियॉ भी अखिल भारतीय व्यवस्था के अभिन्न अंग के रूप में राष्ट्रीय कृषि की समस्याओं से उत्प्रेरित थी।

भारतीय कृषि और काश्तकार की बिगडती हुई दशा को ठीक करने के लिए विभिन्न आन्दोलनों ने इसके लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाब डाला। यहॉ यह उल्लेखनीय है कि इसके पुनरूत्थान सम्बन्धी आन्दोलन का रूप और विस्तार राष्ट्रीय था। कृषि के क्षेत्र में सुधार के लिए जब विभिन्न दलों ने ब्रिटिश सरकार पर दबाब डाला तो वे राष्ट्रीय भावना से अनुप्रेरित थे। इस राष्ट्रीय भावना के उदय के साथ–साथ कृषि को समृद्ध बनाने की दिशा में भी प्रयास किये। नये भूमि प्रबन्ध और व्यापक ऋणग्रस्तता किसानों की गरीबी और कृषि के ह्रास के दो प्रमुख कारण थे। इसलिए राष्ट्रीय कृषि के उत्थान की किसी भी योजना की सफलता के लिए आवश्यक था कि पुराने सम्पत्ति सम्बन्धो का पुनरीक्षण हो और ऋणग्रस्तता को समाप्त किया जाय।

निष्कर्ष

भारतीय कृषि के पुनर्गठन, इसके विकास और किसानों की समृद्धि के सवाल बडे विकट थे। इनके समाधान के लिए व्यापक योजना की आवश्यकता थी। ऐसी योजना जो सुनियोजित राष्ट्रीय अर्थतन्त्र से संयुक्त हो सारे अर्थतन्त्र के विकास के बिना किसी एक अंग या उपांग का विकास पूरी तरह से संभव नहीं है। आद्यौगिक उत्पादन की योजना के लिए कृषिजन्य उत्पादनों का समायोजन आवश्यक है और इनकी सफलता सुनियोजित मुद्रा एवं ऋण तथा साख के संगठन पर निर्भर है।[15]
भारतीय जनता की जरूरतों और उसकी साधारण आर्थिक प्रगति के लिए कृषि का मुक्त विकास आवश्यक है। ऐसा मुक्त विकास ही कृषि सम्बन्धी राष्ट्रीय योजना का उद्देश्य है लेकिन इस प्रकार की किसी भी योजना की सफलता की एक आवश्यक शर्त यह है कि राजनीतिक सत्ता भारतीय जनता के हाथ में हो। सुनियोजित और समृद्ध राष्ट्रीय कृषि के लिए देश की अपनी राष्ट्रीय सरकार आवश्यक है। ऐसी सरकार जो विदेशी या देशी निहित स्वार्थो के बदले भारतीय जनसमूह के हित और आकांक्षाओं की अभिव्यक्त करे।

यह बात भी माननी होगी कि समस्त कृषिजन्य अर्थतन्त्र के नवनिर्माण जैसा बृहद कार्य केवल व्यक्तिगत उद्यम से संभव नही है। यह कार्य राज्य द्वारा ही संभव है। ऐसी योजना का यह भी मतलब होगा कि कृषि उत्पादन के क्षेत्र में लाभ और प्रतियोगिता की भावना समाप्त कर दी जाय। साथ ही भारतीय जनता की जरूरतों और भारतीय अर्थतन्त्र की सर्वांगीण प्रगति के दृष्टिकोण से कृषि उत्पादन को सहयोग के सिद्धान्त पर निरूपित करना पडेगा। जिस प्रकार के कृषक संगठन की हम कल्पना करते है वह जनता के हितार्थ राज्य द्वारा उत्पादन के विनियम और कृषि उत्पादन के जनोपयोगी सेवाओं के रूप में परिवर्तन पर आधारित होगा।[16]

इस तरह भारतीय कृषि के पुनरूद्धार और उसकी प्रगति की समस्या महज तकनीकी आर्थिक समस्या नहीं थी। यह मूलतः सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक समस्या थी। भारतीय उद्योग के समुचित, सर्वांगीण और मुक्त विकास से इसका गहरा सम्बन्ध था। उद्योगों के विस्तार से ही देहात की आबादी का अधिशेष अन्यत्र आत्मसात हो सकता था, और कृषि के आधुनिकीकरण और मशीनीकरण के लिए औजारों और यंत्रों का निर्माण हो सकता था। यह राजनीतिक शक्ति और सत्ता का भी सवाल था। सवाल असल में भारतीय जनता के स्वतन्त्र, सार्वभौम राज्य की स्थापना का था, ऐसा राज्य जिसमें शक्ति नीहित स्वार्थो के हाथ में न होकर आबादी के उत्पादक और शोषित तत्वों के पास हो।

इस तरह कृषि के नवनिर्माण की समस्या ऐतिहासिक तौर पर उच्च स्तरीय समाज के नवनिर्माण और स्वतन्त्रता की समस्या से संपृक्त थी और यह ऐसी राष्ट्रीय समस्या थी जिसका प्रगतिशील निदान ही सम्भव था।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *शेलवंकर, के0 एस0 : प्राब्लम ऑफ इण्डिया, 1940 पृ0सं0 106–07*
2. *वाडिया एण्ड मर्चेण्ट : इकोनोमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री आफ माडर्न इण्डिया पृ0सं0 167,249, 231,*
3. *वही, पृ0सं0 85*
4. *वही, पृ0सं0 87*
5. *अहमद, जेड़0ए0 : दि अग्रेरियन प्राब्लम इन इंड़िया, 1936 द्वारा उद्वृत, पृ0सं0 01*
6. *मुखजी, राधा कमलः लैण्ड़ प्राब्लम इन इण्डिया, 1933, पृ0सं0 196, 206*
7. *मुखजी, राधा कमलः लैण्ड़ प्राब्लम इन इण्डिया, 1933, पृ0सं0 196*
8. *रायल कमीशन आन एग्रीकल्चर, पृ0सं0 433–34*
9. *दत्त, आर0 पी0ः इण्डिया टूड़े, 1940, पृ0सं0 216,*
10. *वाडिया एण्ड मर्चेण्टः एशेज आन कोलोनिएलिज्म से उद्वृत, पृ0सं0 249,*
11. *फ्लाउड़ कमीशन रिपोर्ट, पृ0सं0 37*
12. *साइमन कमीशन रिपोर्ट, वाल्यूम 1, पृ0सं0 340*
13. *वाडिया एण्ड मर्चेण्टः आवर इकोनामिक प्राब्लम, 1943, पृ0सं0 231*
14. *कांग्रेस इन्क्वायरी कमेटी रिपोर्ट द्वारा उद्वृत, पृ0सं0 23*
15. *वाडिया एण्ड मर्चेण्टः आवर इकोनामिक प्राब्लम, 1943, पृ0सं0 231*
16. *वाडिया एण्ड मर्चेण्टः आवर इकोनामिक प्राब्लम, 1943, पृ0सं0 195, 96*